वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 177
ISBN 978-93-80353-63-0

जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव

–रचयित्री –

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शाश्वत तीर्थ अयोध्या में भगवान ऋषभदेव जन्मभूमि टोंक पर नवनिर्मित जिनमंदिर में विराजमान भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव माघ शु. 11 से फाल्गुन कृ. 3 (दिनाँक 14 से 20 फरवरी 2011) के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 292943
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

COURTESY—JAIN BOOK DEPOT
C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain
C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1
Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

द्वितीय संस्करण	वीर नि. सं. 2537	मूल्य
1100 प्रतियाँ	20 फरवरी 2011	16/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

प्रथम संस्करण सन् 1999 – 5000 प्रतियाँ

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

''आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है'' इस सूक्ति को चरितार्थ करने वाली प्रस्तुत पुस्तक की रचना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के करकमलों से सन् 1999 में हुई थी। उन्होंने समय की आवश्यकता को देखते हुए भगवान ऋषभदेव के माध्यम से अनादिनिधन जैनधर्म का प्रचार-प्रसार करने का जो बिगुल देशभर में बजाया, उससे निश्चित ही समाज में नवचेतना जागृत हुई है।

धर्म यूँ तो कहने की वस्तु नहीं प्रत्युत् धारण करने की वस्तु है तथापि उसके भ्रान्त स्वरूप को प्रचारित होते देख समय-समय पर उसे महापुरुषों ने समीचीन रूप में प्रकाशित किया है। पुरातत्व विभाग के अधिकारी श्री पी.पी. राय चौधरी ने भी लिखा है कि–जैनधर्म की पौराणिकता के बारे में बता पाना बहुत कठिन है। इसके विपरीत किन्हीं-किन्हीं लेखकों ने जैनधर्म को भगवान महावीर द्वारा संस्थापित मान लिया है किन्तु इस लघु पुस्तिका को पढ़ने से इस भ्रान्ति का निराकरण सहज ही हो सकता है।

इस पुस्तक में तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के बारे में वर्णन है, जो करोड़ों वर्ष पूर्व के इतिहास का स्मरण कराता है। जैनधर्म के कर्मसिद्धान्त, सृष्टिरचना, तीर्थंकरों के पंचकल्याणक, जैनधर्म की उदारता आदि का भी इसमें संक्षिप्त वर्णन है तथा भगवान ऋषभदेव के पुत्र सम्राट् चक्रवर्ती भरत के नाम पर हमारे इस देश का ''भारत'' नाम विभिन्न वेदपुराणों के माध्यम से सिद्ध किया है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार अयोध्या तीर्थ अनन्त तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने से शाश्वत तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। किन्तु हुण्डावसर्पिणी कालदोष के कारण इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में से पाँच तीर्थंकर यहाँ जन्मे हैं, उनमें भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हैं। उनकी विशालकाय प्रतिमा जहाँ अयोध्या के रायगंज मंदिर में विराजमान है, वहीं ऋषभदेव की जन्मभूमि के रूप में प्राचीन टोंक युगादि इतिहास का स्मरण कराता है। इस टोंक के जीर्णोद्धार की प्रेरणा जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रदान की, तो उन्हीं के गृहस्थावस्था के लघु भ्राता श्री कैलाशचंद

जैन सर्राफ (मेरे बड़े भाई) ने अपने सम्पूर्ण परिवार की ओर से टोंक के जीर्णोद्धार स्वरूप वहाँ सुन्दर जिनमंदिर निर्मित कराने का पुण्यमयी सौभाग्य प्राप्त किया। उस मंदिर निर्माण की पूर्णता पर वहाँ विराजमान होने वाली सवा 4 फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा के पंचकल्याणक एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव अवसर पर इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है। अयोध्या तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष होने के नाते मैं उनका आभार मानते हुए उनके पुण्य की अनुमोदना करता हूँ।

यह पुस्तक लघु होते हुए भी गागर में सागर के समान अपने में अपूर्व सार को समाहित करके पाठकों को जैनधर्म का ज्ञान कराने में कुंजी के समान है। इसका सदुपयोग कर आप सभी स्वयं समीचीन ज्ञान प्राप्त करें तथा अन्य जैन-अजैन सभी को उससे परिचित करावें, यही हार्दिक अभिलाषा है।

वर्तमान अयोध्या

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

वीर निर्वाण के लगभग सौ वर्ष बाद मगध नरेश नंदिवर्धन ने अयोध्या में मणिपर्वत नामक उत्तुंग जैन स्तूप बनवाया था, जो आज मणि पर्वत टीला के नाम से प्रसिद्ध है। मौर्य सम्राट संप्रति और वीर विक्रमादित्य ने इस क्षेत्र के पुराने जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार एवं नवीन मंदिरों का निर्माण कराया था। गुजरात नरेश कुमारपाल चौलुक्य (सोलंकी) ने भी यहाँ जिनमंदिर बनवाये थे।

यह टोंक ला. केसरी सिंह के समय से पूर्व ही विद्यमान थी और उन्होंने 24 ई. में इसका जीर्णोद्धार कराया था, पुनः 1899 ई. में लखनऊ के पंचों ने तथा 1956 ई. में ला. जम्बू प्रसाद जैन, गोटे वाले-लखनऊ ने जीर्णोद्धार कराया था। यह टोंक स्वर्गद्वार मोहल्ले में स्थित है।

कटरा मुहल्ले में स्थित प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर है, शिखरयुक्त इस मंदिर में चार वेदियाँ हैं, यहाँ पर एक प्रतिमा वि. सं. 1224 की हैं। चौथी वेदी में भगवान ऋषभदेव की 9 फुट उत्तुंग प्रतिमा व आजू-बाजू में भरत-बाहुबली की प्रतिमा आचार्यश्री देशभूषण महाराज की प्रेरणा से सन् 1952 में विराजमान की गई हैं। मंदिर के आंगन में भगवान सुमतिनाथ की टोंक है, जिसमें भगवान सुमतिनाथ के चरण विराजमान हैं। कटरा मोहल्ले में ही एक टोंक है, जिसमें अयोध्या में ही जन्में श्री भरत चक्रवर्ती और कामदेव बाहुबली के चरण विराजमान हैं तथा कटरा मंदिर के पास ही पाण्डुक शिला परिसर में भगवान शांति, कुंथु व अरहनाथ भगवान के चरण विराजमान हैं। कटरा मोहल्ले में ही भगवान अभिनंदननाथ के जन्मस्थान के प्रतीकरूप में टोंक है जो शिखरबंद है, इसमें भी भगवान के चरण स्थापित हैं। इसका जीर्णोद्धार भी सन् 1724 व सन् 1899 में हुआ है। बकसरिया टोले में जिसे बेगमपुरा भी कहते हैं, भगवान अजितनाथ की टोंक है। जन्मस्थान के प्रतीक रूप में इसमें भगवान अजितनाथ के चरण चिन्ह विराजमान हैं, यह शिखरबंद टोंक है। सरयू नदी के पास राजघाट पर भगवान अनंतनाथ के चरण चिन्ह सहित मंदिर है। इसका जीर्णोद्धार 1724 ई. में व 1899 ई. में कराया गया है। इस टोंक से लगे हुए टीले की पुरातत्व विभाग ने खुदाई कराई थी और अब से लगभग 100 वर्ष पूर्व जनरल कनिंघम ने उस टीले का वर्णन "जैन टीला" नाम से किया था। कुछ वर्ष पूर्व सरयू नदी की बाढ़ से इस टोंक को क्षति पहुँचने पर तीर्थक्षेत्र कमेटी ने जीर्णोद्धार कराया था। मुहल्ला रायगंज में रियासती बाग के मध्य में एक भव्य जिनमंदिर का निर्माण हुआ है। इसमें मूलनायक के रूप में

31 फुट ऊँची विशाल एवं मनोज्ञ भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं। सन् 1965 में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज की प्रेरणा से और दिल्ली आदि स्थानों के अनेक श्रद्धालु उत्साही श्रावकों के सहयोग से यह भव्य जिनमंदिर बना है, आजू-बाजू में अन्य और छह प्रतिमाएँ विराजमान हैं। ऊपर भी दो वेदियाँ हैं।

धनतेरस कार्तिक कृ. त्रयोदशी, सन् 1992 के दिन ब्राह्ममुहूर्त में हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के मन में अयोध्या में विराजमान 31 फुट उत्तुंग विशाल जिनप्रतिमा के महामस्तकाभिषेक कराने की अन्तर्प्रेरणा जागृत हुई, फलस्वरूप 11 फरवरी 1993 को हस्तिनापुर से विहार कर 16 जून 1993 को अयोध्या में मंगल पदार्पण किया, उनके अवध विहार से सम्पूर्ण अवधवासियों में खुशी की लहर दौड़ गई और अवधवासी अपनी ब्राह्मी सदृश माता को पाकर कृतकृत्य हो उठे। उस समय माताजी ने भगवान की विशाल प्रतिमा के प्रथम दर्शन किए और मात्र कुछ ही दिन के प्रवास में अयोध्या तीर्थ की जीर्ण-शीर्ण अवस्था देख उनका अन्तर्हृदय रो पड़ा और उन्होंने उसी क्षण वहाँ के पदाधिकारियों की विनती स्वीकार कर अपनी जन्मभूमि के उत्साह व स्नेह को ठुकराकर अयोध्या के विकास हेतु अपना चातुर्मास स्थापित करने की स्वीकृति प्रदान कर दी, फिर तो राम जन्मभूमि के नाम से विख्यात अयोध्या देखते ही देखते ऋषभ जन्मभूमि के नाम से विश्व के मानसपटल पर अंकित हो गई। 24 फरवरी 1994 को उत्तरप्रदेश में प्रथम बार भगवान ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक हुआ, साथ ही प्रथम भेंट के रूप में पूज्य माताजी ने मंदिर के आजू-बाजू तीन चौबीसी मंदिर एवं समवसरण मंदिर का निर्माण कराया। इन नूतन जिनमंदिरों में तीन चौबीसी मंदिर में तीन मंजिल वाला एक 72 दल का विस्तृत कमल है। उन दलों पर तीन चौबीसी के कुल बहत्तर तीर्थंकर भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। बायीं तरफ समवसरण में भगवान ऋषभदेव के समवसरण में गंधकुटी में 4 प्रतिमाएँ हैं और मानस्तंभ, चैत्य प्रासादभूमि, उपवनभूमि, कल्पतरु भूमि, भवनभूमि आदि में 152 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। श्रीमण्डप भूमि में गणधर देव, मुनिगण व आर्यिकाओं की प्रतिमाएँ भी हैं। सुन्दर बाग-बगीचे से समन्वित इस रायगंज मंदिर परिसर में प्राचीन धर्मशाला के अतिरिक्त तीन नूतन धर्मशालाएँ (डीलक्स फ्लैट युक्त), आचार्य शांतिसागर निलय, आचार्य देशभूषण निलय एवं गणिनी ज्ञानमती निलय हैं तथा सुंदर भोजनशाला भी चल रही है। पूज्य माताजी की प्रेरणा से यहाँ होने वाली पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में पधारने वाले तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने अयोध्या में भगवान ऋषभदेव नेत्र चिकित्सालय की स्थापना की तथा फैजाबाद स्थित "डा. राम

मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय'' में 'ऋषभदेव जैन शोधपीठ' की भी स्थापना हुई। माताजी की ही प्रेरणा से अयोध्या के राजघाट पर स्थित राजकीय उद्यान ''ऋषभदेव उद्यान'' के नाम से घोषित हुआ, जहाँ 21 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान की गई तथा टोकों का जीर्णोद्धार कर वहाँ अनेक शिलालेख लगाए गए, जो अयोध्या के इतिहास की गौरव गाथा गा रहे हैं। सरयू तट पर स्थित भगवान अनंतनाथ टोंक परिसर में 24 तीर्थंकरों के परिचय व चरण चिन्ह तथा ब्राह्मी-सुन्दरी माता के चरण विराजमान किए गए हैं।

सन् 1994 में माताजी की प्रेरणा प्राप्त कर वहाँ के पदाधिकारियों ने प्रत्येक 5 वर्ष के अनन्तर भगवान का महामस्तकाभिषेक महोत्सव आयोजित करने की घोषणा की थी, मगर शायद उस धरा को पुनः उन्हीं ब्राह्मी माता का इंतजार था, इसलिए सन् 2005 में टिकैतनगर में नवनिर्मित जिनमंदिर के पंचकल्याणक हेतु अवध की ओर विहार करते हुए पूज्य माताजी के श्रीचरण एक बार पुनः अयोध्या की धरा पर पड़े और उनके संघ सानिध्य में 11 वर्षों बाद उन आदीश्वर बाबा का महामस्तकाभिषेक अप्रैल 2005 में धूमधाम से सम्पूर्ण विश्व में अयोध्या की कीर्तिपताका को फहराता हुआ सम्पन्न हुआ।

एक बार पुनः अयोध्या में स्वर्णिम अवसर आया है, जब पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी का संकल्प साकार होकर भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि टोंक पर भव्य जिनमंदिर बनकर पूर्ण हुआ है। उसका पंचकल्याणक महोत्सव फरवरी 2011 में सम्पन्न हो रहा है।

इस अयोध्या तीर्थ में अन्य इतिहास ग्रंथों के अनुसार सन् 1330 में अनेक मंदिर थे। महाराजा नाभिराज का मंदिर, पार्श्वनाथ बाड़ी, गोमुख यक्ष, चक्रेश्वरी यक्षी की रत्नमयी प्रतिमा, सीताकुंड, सहस्रधारा, स्वर्गद्वार आदि अनेक जैनायतन विराजमान थे। यहाँ एक श्वेताम्बर जैन मंदिर भी है तथा वैष्णव सम्प्रदाय के साढ़े सात हजार मंदिर माने गए हैं, जिनमें हनुमानगढ़ी, सीता रसोई, दशरथ महल, कनक भवन आदि अनेक दर्शनीय स्थल हैं।

ऐसी पावन शाश्वत जन्मभूमि का कण-कण परम पूज्यनीय व वंदनीय है, जिसका दर्शन-वंदन अनेक पाप कर्मों का नाश कर सातिशय पुण्य प्राप्ति में सहायक है। ऐसे पवित्र तीर्थ के लिए मेरा शत-शत नमन है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991 (22 अक्टूबर, सन् 1934)

गृहस्थ का नाम– कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

सप्तम प्रातिम एवं गृहत्याग– ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में।

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा– भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव

नमः ऋषभदेवाय, धर्मतीर्थप्रवर्तिने।
सर्वा विद्या-कला, यस्मा-दाविर्भूता महीतले।।1।।

जहाँ यह जीव संसरण करता है, चतुर्गति में परिभ्रमण करता है, उसका नाम ''संसार'' है। यह संसार ''लोक'' नाम से भी कहा जाता है–

''लोक्यन्ते'' अवलोक्यन्ते जीवादिषड्द्रव्याणि अस्मिन्निति लोकः''

जहाँ पर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं वह लोक है। वह लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन है एवं स्वभाव से बना हुआ है, अर्थात् इसे किसी ने बनाया नहीं है।

श्री नेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं–

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो, सव्वागासवयवो णिच्चो[1]**।।4।**

यह लोक तीन भागों में विभक्त है– अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। तीन लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है। लोक के तलभाग में चौड़ाई 7 राजू है मध्यलोक तक इसकी ऊँचाई 7 राजू है तथा मध्यलोक से ऊपर सिद्धशिला तक ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई भी 7 राजू है। अधोलोक के तल भाग से घटते-घटते चौड़ाई मध्यलोक के पास 1 राजू रह गई है, आगे मध्यलोक से चौड़ाई बढ़ते हुए ऊपर ब्रह्मस्वर्ग तक साढ़े 3 राजू तक पांच राजू हो गई है पुनः ऊपर घटते हुए साढ़े 3 राजू तक सिद्धशिला तक 1 राजू रह गई है अतः यह लोक पैर फैलाकर कमर पर हाथ रखकर खड़े हुए पुरुष के सदृश "पुरुषाकार" हो जाता है। शंका यह हो सकती है कि 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में अधोलोक एवं 7 राजू में ऊर्ध्वलोक है तो पुनः मध्यलोक को कितना हिस्सा मिला?

इसका समाधान यह है कि असंख्यातों योजनों का 1 राजू होता है और 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में नीचे नरक एवं 7 राजू में ऊपर स्वर्ग हैं। इन दोनों

---

1. त्रिलोकसार गाथा 4।

के मध्य में 1 लाख 40 हजार योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है। बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊँचाई वाला मध्यलोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में ना कुछ के समान है अतएव 14 राजू में ऊँचाई में उसका वर्णन नहीं आया है।

मध्यलोक– यह मध्यलोक 1 राजू चौड़ा है। इस तीन लोक के बीच में 14 राजू ऊँची, एक राजू चौड़ी और एक राजू मोटी एक त्रसनाली है। त्रस जीव इसी में रहते हैं मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं।

इसमें सर्वप्रथम द्वीप का प्रथम जंबूद्वीप है। यह थाली के समान गोल है, एक लाख योजन अर्थात् (400000000) मील व्यास वाला है। इसको घेरकर 2 लाख योजन व्यास वाला लवणसमुद्र है। इसको घेरकर चार लाख योजन व्यास का धातकीखण्ड है। इसे घेरकर कालोदधि समुद्र है। इसे घेरकर पुष्करद्वीप है। इसी के ठीक बीच में मानुषोत्तर पर्वत है जो कि चूड़ी के समान आकार वाला है।यहीं तक जंबूद्वीप, धातकीखण्डद्वीप और आधा पुष्कर ये ढाई द्वीप माने जाते हैं। ऐसे ही एक-एक द्वीप को घेरकर एक-एक समुद्र होने से जितने द्वीप हैं उतने ही समुद्र हैं, जो कि पूर्व-पूर्व के द्वीप-समुद्र से दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

जम्बूद्वीप– जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुमेरु पर्वत है यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी नींव चित्रा पृथ्वी के नीचे एक हजार योजन है और भूमि से ऊपर 99 हजार योजन है इसकी चूलिका 40 योजन ऊँची है।

इस गोलाकार द्वीप में दक्षिण से लेकर उत्तर तक पूर्व-पश्चिम लंबे ऐसे छह कुलपर्वत हैं, जिनके नाम हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी हैं। इन पर्वतों से विभाजित सात क्षेत्र हैं– भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। एक-एक क्षेत्र में 2-2 नदियां ऐसे गंगा-सिंधु, रोहित्-रोहितास्या आदि 14 महानदियाँ हैं।

विदेहक्षेत्र– विदेह के बीच में सुमेरु पर्वत होने से उसके दक्षिण और उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु भोगभूमि हैं तथा पूर्व और पश्चिम में पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह हैं पूर्व विदेह के मध्य में सीता नदी से दक्षिण और उत्तर में ऐसे दो भाग हो गये पुनः दक्षिण में चार वक्षार और तीन विभंगा नदी से आठ देश हो गये, ऐसे ही उत्तर में आठ क्षेत्र हुए एवं पश्चिम विदेह में भी चार-चार वक्षार तथा तीन-तीन विभंगा नदियों से 8-8 क्षेत्र होने से कुल 32 विदेह क्षेत्र हो जाते हैं।

''एक-एक विदेह देश में 96 करोड़ ग्राम, 26 हजार नगर, 16 हजार खेट, 24 हजार खर्वट, 4 हजार मंडब, 48 हजार पत्तन, 99 हजार द्रोण,

14 हजार संवाह और 28 हजार दुर्गाटवी हैं। एक-एक विदेह में एक-एक उपसमुद्र हैं, उन पर एक-एक टापू हैं। वहाँ 56 अन्तरद्वीप, 26 हजार रत्नाकर और 700 कुक्षिवास हैं ये रत्नों के क्रय-विक्रय के स्थान हैं।''[1]

170 कर्मभूमियाँ—जंबूद्वीप में एक भरत, एक ऐरावत एवं बत्तीस विदेह क्षेत्र हैं तथा धातकी- खंडद्वीप में पूर्वधातकीखंड और पश्चिमधातकीखंड एवं पुष्करार्धद्वीप में पूर्व- पुष्करार्धद्वीप और पश्चिमपुष्करार्धद्वीप ऐसे दो-दो भाग हो गये हैं। इसमें विजय, अचल, मंदर और विद्युन्माली ऐसे चार मेरु हैं तथा एक-एक भरत, एक-एक ऐरावत और 32-32 विदेह होने से 5 भरत, 5 ऐरावत और 32×5=160 विदेह हो जाते हैं। प्रत्येक में छह-छह खण्ड होने से मध्य के आर्यखंड में कर्मभूमि व्यवस्था है। इस प्रकार ये 170 कर्मभूमियां मानी है।

अधिकतम तीर्थंकर 170 एवं कम से कम 20 होते हैं—इन्हीं 170 कर्मभूमियों के आर्यखंडों में यदि एक साथ अधिकतम तीर्थंकर या चक्रवर्ती या नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र होवें तो अधिकतम 170 हो सकते हैं और कम से कम एक-एक मेरु संबंधि विदेहों में 4-4 ऐसे 4×5=20 तीर्थंकर तो रहते ही हैं।

कहा भी है–

तित्थद्धसयलचक्की सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण।
वीसं वीसं सयले खेत्ते सत्तरिसयं वरदो[2]।।681।।

तीर्थंकर अर्धचक्री और सकलचक्री ये विदेहक्षेत्र की अपेक्षा अधिकतम 160 एवं कम से कम बीस होते हैं। इन्हीं में भरत-ऐरावत के भी मिला देने से अधिकतम 170 हो जाते हैं।

इस गाथा से स्पष्ट है कि श्रीऋषभदेव और श्री महावीरस्वामी जैसे तीर्थंकर महापुरुष इन कर्मभूमियों में अनन्तों हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे।'' चतुर्थकालों विदेहे चावस्थित एव[3]।'' इस नियम के अनुसार विदेह-क्षेत्रों में हमेशा चतुर्थकाल ही रहता है, षट्काल परिवर्तन नहीं होता है।

षट्काल परिवर्तन कहाँ-कहाँ है ?

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।27।।
ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता[4]।।28।।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में छह कालों से युक्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा जीवों की आयु, ऊँचाई, सुख आदि में वृद्धि और ह्रास होता रहता है।

1. त्रिलोकसार गाथा 674-675-677। 2. त्रिलोकसार गाथा 681। 3. त्रिलोकसार गाथा 882 की टीकांश। 4. तत्त्वार्थसूत्र अ. 3।

यहाँ भरत से पाँचों भरत और ऐरावत से पांचों ऐरावत क्षेत्र लेना है।

पुनः इनसे अतिरिक्त क्षेत्रों में–विदेह क्षेत्रों में तथा हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत क्षेत्रों में जैसी की तैसी व्यवस्था बनी रहती है। विदेहों में 160 विदेह क्षेत्र गिनाये हैं। हैमवत तथा हैरण्यवत में जघन्य भोगभूमि, हरि और रम्यक में मध्यम तथा देवकुरु-उत्तरकुरु में जो कि सुमेरु के दक्षिण-उत्तर में हैं, उनमें उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था स्थायी है।

प्रथम कर्मभूमि—जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में मध्य में पूर्व-पश्चिम तथा विजयार्ध पर्वत एवं हिमवन पर्वत से निकली हुई गंगा-सिंधु नदियों के निमित्त से छहखंड हो जाते हैं इनमें मध्य के आर्यखण्ड में षट्काल परिवर्तन होता रहता है। अवसर्पिणी में सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमा दुःषमा, दुःषमा सुषमा, दुःषम और अतिदुःषमा ये छह काल होते हैं और उत्सर्पिणी में अतिदुःषमा से लेकर सुषमासुषमा पर्यन्त छह काल होते हैं इनमें से सुषमासुषमा आदि तीन कालों में भोगभूमि एवं दुःषमासुषमा आदि तीन में कर्मभूमि की व्यवस्था होती है।

इस व्यवस्था के अनुसार प्रथम जंबूद्वीप के प्रथम भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में जो कर्मभूमि आती है वह प्रथम कहलाती है।

भोगभूमि—भोगभूमि में मद्यांग, वादित्रांग, भूषणांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भोजनांग, भाजनांग और वस्त्रांग ये दशप्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित फल देते रहते हैं।

कुलकरों की उत्पत्ति—इस वर्तमान अवसर्पिणी में यहां भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तृतीय काल में जब पल्य का आठवां भाग शेष रह गया तब कुलकरों की उत्पत्ति प्रारंभ हो गई, इनके नाम–प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराज।

हरिवंशपुराण में लिखा है कि बारहवें मरुदेव कुलकर ने अकेले पुत्र ''प्रसेनजित्'' को जन्म दिया अतः यहाँ से युगलिया परंपरा समाप्त हो गई। इनका विवाह किसी प्रधान कुल की कन्या के साथ सम्पन्न हुआ है।

कहा भी है–

प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदलवभूषितम्।
विवाहविधिना वीरः प्रधानकुलकन्यया।।[1]

इन प्रसेनजित् से नाभिराज भी अकेले ही जन्मे। इन्द्र ने इनका विवाह

1.हरिवंशपुराण सर्ग 7।

कु. मरुदेवी के साथ सम्पन्न किया।

कहा भी है–

तस्यासीन्मरुदेवीति, देवी देवीव सा शची।।
तस्याःकिल समुद्वाहे, सुरराजेन चोदिता।
सुरोत्तमाः महाभूत्या, चक्रुः कल्याणकौतुकम्[1]।।56।।

हरिवंशपुराण में भी कहा है–

अथ नाभेरभूद्देवी मरुदेवीति वल्लभा।
देवी शचीव शक्रस्य शुद्धसंतानसंभवा[2]।।6।।

शुद्ध कुल में उत्पन्न हुई मरुदेवी राजा नाभिराज की वल्लभा हुई।

अयोध्या नगरी की रचना–मरुदेवी और नाभिराज से अलंकृत पवित्र स्थान में जब कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब उनके पुण्य विशेष से इन्द्र ने एक नगरी की रचना करके उसका नाम 'अयोध्या' रखा।

"छठे काल के अंत में जब प्रलयकाल आता है तब उस प्रलय में यहाँ आर्यखंड में एक हजार योजन नीचे तक की भूमि नष्ट हो जाती है। उस काल में अयोध्यानगर स्थान के सूचक नीचे चौबीस कमल देवों द्वारा किये जाते हैं।"

इन्हीं चिन्हों के आधार से देवगण पुनः उसी स्थान पर अयोध्या की रचना कर देते हैं।

इसीलिए "अयोध्यानगरी" शाश्वत मानी गई है।

वैदिक ग्रंथों में भी अयोध्या को बहुत ही महत्व दिया है यथा–

'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या[4]।"

यह देवों की नगरी अयोध्या आठ चक्र और नवद्वारों से शोभित है।

रुद्रयामल ग्रंथ में तो अयोध्यापुरी को विष्णु भगवान का मस्तक कहा है। यथा–एतद् ब्रह्मविदो वदन्ति मनुयोऽयोध्यापुरी-मस्तकम्।

बाल्मिकि रामायण में इसे मनु द्वारा निर्मित बारह योजन लंबी माना है।

हरिवंशपुराण में राजा नाभिराज के महल को 81 खन ऊँचा, रत्ननिर्मित "सर्वतोभद्र" नाम से कहा है।

श्री ऋषभदेव का स्वर्गावतरण–छह माह बाद भगवान ऋषभदेव "सर्वार्थसिद्धि" विमान से च्युत होकर यहाँ माता मरुदेवी के गर्भ में आने वाले हैं ऐसा जानकर सौधर्मइन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी–हे धनपते! तुम अयोध्या में माता मरुदेवी के

1. महापुराण पर्व 12। 2. हरिवंशपुराण सर्ग......1। 3. भक्त्यादिक्रियासंग्रह (टिप्पण) पृ. 162। 4. अथर्ववेद दशमस्कंध।

आंगन में रत्नों की वर्षा प्रारंभ कर दो। उसी दिन से कुबेर ने प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ प्रमाण उत्तम-उत्तम पंचवर्णी रत्न बरसाना शुरू कर दिया।

एक दिन मरुदेवी महारानी ने पिछली रात्रि में ऐरावत हाथी आदि उत्तम-उत्तम सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव के मुख से "तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र अवतरित होंगे" ऐसा सुनकर महान हर्ष को प्राप्त हुईं।

जब इस अवसर्पिणी के तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तब आषाढ़ कृ. द्वितीया के दिन भगवान का गर्भागम हुआ। उसी दिन अपने दिव्यज्ञान से जानकर इन्द्र ने असंख्या देवों के साथ आकर महाराजा नाभिराज और महारानी मरुदेवी का अभिषेक करके वस्त्राभरण आदि से उनका सम्मान कर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र की आज्ञा से श्री, ह्री आदि देवियां माता की सेवा करने लगीं।

क्या भगवान पुनः अवतार लेते हैं ?जैनधर्म के अनुसार कोई भी भगवान पुनः-पुनः अवतार नहीं लेते हैं। प्रत्युत हम और आप जैसे कोईभी संसारी प्राणी क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर पांच कल्याणकों को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं वे पुनः इस संसार में कभी भी अवतार नहीं लेते हैं जैसा कि भगवान ऋषभदेव के 'दशावतार' अर्थात् दशभवों का वर्णन पढ़ने से यह भगवान का गर्भावतार प्रकरण स्पष्ट हो जाता है।

इसी जंबूद्वीप के विदेह क्षेत्र में गंधिला देश के विजयार्ध की श्रेणी में एक 'महाबल' नाम के विद्याधर राजा थे एक बार इन्होंने अपने स्वयंबुद्ध मंत्री के द्वारा जैनधर्म को स्वीकार कर सल्लेखना से मरणकर स्वर्ग में 'ललितांग' नाम के देव पद को प्राप्त किया। वहाँ से च्युत हो विदेह क्षेत्र में राजा 'वज्रजंघ' हो गये। इन्होंने अपनी रानी श्रीमती के साथ एक बार वन में युगल मुनियों को आहारदान दिया। इसके फलस्वरूप उत्तम भोगभूमि में 'आर्य' हो गये। वहाँ चारणऋद्धिधारी मुनियों के संबोधन से सम्यग्दर्शन ग्रहण कर आयु के अंत में मरकर दूसरे स्वर्ग में 'श्रीधर' देव हो गये। वहां से च्युत हो विदेहक्षेत्र में सुसीमा नगरी के राजा 'सुविधि' हो गये। यहां भी श्रावकधर्म व क्षुल्लकदीक्षा के अनंतर मुनि बनकर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर पुनः सोलहवें स्वर्ग में 'इन्द्र' हो गये, वहाँ से च्युत होकर जंबूद्वीप के विदेह में पुण्डरीकिणी नगरी में 'वज्रनाभि' चक्रवर्ती हो गये। इस भव में भी महामुनि बनकर पिता तीर्थंकर भगवान वज्रसेन के पादमूल में सोलहकारण

भावनाओं को भाते हुए तीर्थंकरप्रकृति का बंध कर लिया। फलस्वरूप अंत में समाधिध्यान से मरण कर 'सर्वार्थसिद्धि' में 'अहमिंद्र' हो गये।

इस प्रकार-1. महाबल 2. ललितांगदेव 3. राजा वज्रजंघ 4. भोगभूमिज-आर्य 5. श्रीधरदेव 6. राजा सुविधि, 7. अच्युतेन्द्र 8. वज्रनाभि चक्रवर्ती 9. अहमिन्द्र इन नवभवों में क्रम-क्रम से उत्थान करते हुए जिनधर्म के प्रसाद से सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर यही अहमिन्द्र का जीव माता मरुदेवी के गर्भ में आ गया। जब ये भगवान ऋषभदेव निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे तो पुनः कभी भी इस संसार में अवतार नहीं लेंगे।

जन्मकल्याणक महोत्सव—पंद्रह माह तक कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि के अनंतर चैत्र कृष्णा नवमी को सूर्योदय के समय माता मरुदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसी क्षण स्वर्ग में इन्द्रों के आसन हिलने लगे, मुकुट झुक गये, कल्पवृक्षों से पुष्प बरसने लगे और चारों प्रकार के देवों के यहां बिना बजाये अपने आप बाजे बजने लगे। यथा-

कल्पेषु घण्टा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात जिनः स एषः[1]।।

कल्पवासी देवों के यहाँ घंटे बजने लगे, भवनवासी देवों के यहाँ शंखध्वनि होने लगी, ज्योतिष्क देवों के यहां सिंहनाद होने लगा और व्यंतर देवों के यहां भेरी बजने लगी। जिनके जन्म के समय ऐसा हुआ ये जिन भगवान वे ही हैं।

जैसे कि आज टेलीविजन या रेडियों का बटन दबाते ही हजारों किलोमीटर दूर के भी दृश्य और संगीत सामने आ जाते हैं किन्तु वहां तो बटन दबाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। प्रत्युत तीर्थंकर प्रकृति का पुण्यरूपी बटन अपने आप ही दब गया और 40 करोड़ मील से अधिक ऊँचाई पर स्थित स्वर्गलोक में अतिशय फैल गया। तत्क्षण ही सौधर्मइन्द्र असंख्य देव परिवारों के साथ मध्यलोक में आये और जन्मजात शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर 1008 कलशों से उनका जन्माभिषेक संपन्न किया।

कुछ विद्वान सहज ही कह देते हैं कि वे तीर्थंकर हम आप जैसे साधारण मानव थे लेकिन ऐसा नहीं है वे तीर्थंकरप्रकृति नामकर्म के बंध करने तक तो साधारण कहे जा सकते हैं किन्तु तीर्थंकर प्रकृति को बांध लेने के बाद उनमें कुछ विशेष ही अतिशय प्रगट हो जाते हैं इसीलिए तो श्रीसमन्तभद्रस्वामी ने कहा है-

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः[2]।।

1.प्रतिष्ठातिलक अ. 9। 2. स्वयंभूस्तोत्र।

हे नाथ! आपने मनुष्य योनि में जन्म तो लिया है किन्तु आप मानुषी प्रकृति का उल्लंघन कर चुके हैं इसीलिए आप देवताओं के भी देवता हैं यही कारण है कि आप परमदेवता हैं। हे जिनधर्म तीर्थंकर! आप हमारे कल्याण के लिए हम पर प्रसन्न होइये।

श्री ऋषभदेव के द्वारा कर्मभूमि व्यवस्था—श्री नाभिराजा ने भगवान का यशस्वती और सुनन्दा कुमारिकाओं के साथ इन्द्र की अनुमति से विवाह कर दिया। यशस्वती ने भरत आदि 100 पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री को तथा सुनन्दा ने बाहुबली एवं सुंदरी कन्या को जन्म दिया।

भगवान ने पुत्रियों को एवं पुत्रों को सर्वविद्याओं में तथा कलाओं में निष्णात कर दिया।

प्रजा की प्रार्थना से असि, मषि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन षट्क्रियाओं का उपदेश देकर उन्हें जीने की कला सिखायी। वर्णव्यवस्था और विवाहव्यवस्था आदि प्रगट की वह भी अवधिज्ञान से विदेह क्षेत्र की शाश्वत व्यवस्था को जानकर ही की थी अतएव वे प्रभु स्रष्टा, विधाता, ब्रह्मा आदि भी कहलाये थे।

श्री नेमिचन्द्राचार्य ने कहा है—

पुरगामपट्टणादी, लोहियसत्थो य लोयववहारो।
धम्मो वि दयामूलो, विणिम्मियो आदिबह्मेण[1]।।

भगवान की आज्ञा से चूँकि इन्द्र ने देश, नगर, ग्राम आदि की व्यवस्था बनाई थी। अतः पुर, ग्राम, नगर आदि लौकिकशास्त्र-व्याकरण आदि, लोकव्यवहार एवं दयामूल धर्म को आदिब्रह्मा ने— भगवान ऋषभदेव ने निर्माण किया है।

एक समय इन्द्रों ने आकर महाराजा नाभिराजा से आज्ञा लेकर प्रभु का राज्याभिषेक कर दिया। अनंतर भगवान ने अनेक राजा, महाराजा आदि बनाकर उन्हें सुंदर राजनीति का उपदेश दिया।

दीक्षाकल्याणक—पुनः एक दिन भगवान नीलांजना के नृत्य के समय उसकी आयु समाप्त हुई देखकर विरक्त हो गये। इन्द्रों द्वारा लाई गई पालकी में बैठकर सिद्धार्थ वन में पहुँचे और जहाँ वटवृक्ष के नीचे केशलोंच करके दैगम्बरी दीक्षा ली उस स्थल का नाम "प्रयाग" यह प्रसिद्ध हो गया। एक वर्ष 39 दिन बाद हस्तिनापुर में राजकुमार श्रेयांस ने प्रभु को वैशाख शु. 3 के दिन इक्षुरस का आहार देकर दानतीर्थ- प्रवर्तक पद को प्राप्त किया।

1.त्रिलोकसार गाथा 802।

केवलज्ञान कल्याणक—एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद प्रभु को प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्रगट हो गया। उसी क्षण भगवान पृथ्वी से 5000 धनुष–20000 हाथ ऊपर आकाश में अधर पहुँच गये और अर्धनिमिष मात्र में ही कुबेर ने आकाश में भगवान का समवसरण बना दिया। यह 12 योजन–96 मील का गोल था। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

समवसरण में आठ भूमियां और तीन कटनी होती हैं तथा चारों ओर चार वीथी–सड़कें होती हैं। इन सड़कों के मध्य प्रारंभ में ही चारों दिशाओं में एक-एक ऐसे चार मानस्तंभ होते हैं। ये भगवान के शरीर की ऊँचाई से बारह गुने ऊँचे होते हैं। यथा–भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष 2000 हाथ थी अतः 2000×12=24000 हाथ ऊँचे थे। इनके दर्शन से मानी का मान गलित हो जाता था, वह भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि बनकर अनंतसंसार को सीमित कर लेता था।

इस समवसरण में पृथिवी से एक हाथ ऊपर से 1-1 हाथ ऊँची ऐसी 20 हजार सीढ़ियाँ रहती थीं। इनसे चढ़कर मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी भव्य जीव–बाल, वृद्ध, रोगी, अंधे, लंगड़े, लूले आदि 48 मिनट मात्र में ऊपर पहुँच जाते थे। यह अतिशय भगवान का ही था।

इसमें चार परकोटे और पांच वेदियों के अंतराल में आठ भूमियां हैं। जिनमें क्रम से धूलिसाल परकोटा, चैत्यप्रासादभूमि, वेदी, खातिकाभूमि, वेदी, लताभूमि, परकोटा, उपवनभूमि, वेदी, ध्वजाभूमि, परकोटा, कल्पवृक्षभूमि, वेदी, भवनभूमि, परकोटा, श्रीमण्डपभूमि और वेदी ऐसी व्यवस्था रहती है। आगे 16 सीढ़ी चढ़कर प्रथम कटनी, 8 सीढ़ी के बाद दूसरी कटनी, पुनः 8 सीढ़ी चढ़कर तीसरी कटनी पर गंधकुटी में भगवान विराजमान रहते हैं।

प्रत्येक परकोटे एवं वेदियों में चारों दिशाओं में 1-1 गोपुर द्वार बने थे, उनमें दोनों तरफ नाट्यशालाएं, मंगलघट, धूपघट और नवनिधि भंडार रखे हुए थे, इन द्वारों के रक्षक देवगण थे।

प्रथम भूमि में–1-1 जिनमंदिर के अंतर से 5-5 प्रासाद थे।

द्वितीय भूमि में–निर्मल जल में हंस, बतख आदि एवं कमल आदि थे।

तृतीय भूमि में–छहों ऋतुओं के पुष्प खिले थे। चतुर्थभूमि में चार दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन थे, इनमें एक-एक चैत्यवृक्षों में चारों दिशाओं में जिनप्रतिमाएं विराजमान रहती हैं। पांचवी भूमि में दशविध चिन्हों से सहित ध्वजाएं थीं। छठी भूमि में दशविध कल्पवृक्ष थे तथा चार दिशा

में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात सिद्धार्थ वृक्षों में सिद्धों की प्रतिमाएं विराजमान थीं। सातवीं भूमि में भवन बने थे इसमें उभय तरफ अर्हंत,सिद्ध प्रतिमाओं से सहित 9-9 स्तूप थे और आठवीं भूमि में बारह सभा बनी हुई थीं।

क्रम से इन बारह सभाओं में 1. मुनिगण 2. कल्पवासिनी देवियां 3. आर्यिका और श्राविका 4. ज्योतिषीदेवी 5. व्यंतर देवी 6. भवनवासिनी देवी 7. भवनवासी देव 8. व्यंतर देव 9. ज्योतिषी देव 10. कल्पवासीदेव 11. मनुष्य और 12. तिर्यंचगण बैठते थे।

समवसरण का ऐसा प्रभाव रहता है कि जातविरोधी सिंह, हरिण, गाय, व्याघ्र, सर्प, नेवला, मोर आदि सभी पशु-पक्षी परस्पर के वैर को छोड़कर मैत्रीभाव धारण कर भगवान का उपदेश सुनते हैं।

संसार में एक तीर्थंकर भगवान का समवसरण ही ऐसा है कि जहाँ देवों और मनुष्यों के समान तिर्यंचों के लिए भी एक कोठा निश्चित है उस कोठे में बैठकर संख्यातों पशु-पक्षी भगवान का उपदेश सुनकर अपना कल्याण कर लेते हैं। इनमें लाखों पशु तो अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत धारण करके स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं तथा दिक्कुमारियां हाथ में मंगलद्रव्य धारण करती हैं।

भगवान के विहार से सर्वत्र 800-800 मीलों तक मंगल क्षेम और सुभिक्ष हो जाता है। सभी आपस में मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं। रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि उपद्रव नहीं होते हैं। भूकंप, नदी, बाढ़, अग्निप्रकोप, अकालमृत्यु आदि दुर्घटनाएं भी टल जाती हैं।

वास्तव में जो महापुरुष स्वयं प्राणीमात्र पर दया करते हुए पूर्ण अहिंसा धर्म का पालन करते हैं उन्हीं में ऐसी विशेषता आ जाती है कि क्रूर प्राणी भी उनके सानिध्य को प्राप्त कर क्रूरता छोड़ देते हैं, वैर-विरोध छोड़ देते हैं।

पुनरपि भगवान ने समवसरण में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाण का उपदेश देकर असंख्य प्राणियों को धर्मामृत का पान कराया। जब भगवान केवलज्ञानी हो जाते हैं। तब मोह, राग, द्वेष, इच्छा आदि का अभाव हो जाने से उनका उपदेश भी बिना इच्छा के मात्र भव्यों के पुण्योदय से ही होता है जैसे कि मेघ बिना इच्छा के ही बरसते हैं।

मोक्षकल्याणक—लाखों वर्षों तक भगवान ऋषभदेव ने श्रीविहार करके भव्यों को संतर्पित किया। अनंतर कैलाशपर्वत पर योगनिरोध करके आयुकर्म

के अंत में निर्वाण धाम प्राप्त कर लिया। जब तृतीयकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष थे तब भगवान मोक्ष गये हैं। हुंडावसर्पिणी काल के दोष से प्रथम तीर्थंकर तृतीयकाल के अंत में ही जन्म लेकर तृतीयकाल में ही मोक्ष चले गये हैं। वहाँ वे भगवान अनन्तानन्त काल तक अतीन्द्रिय सुख में निमग्न रहेंगे पुनः कभी भी इस पृथिवी पर अवतार नहीं लेंगे।

कहा भी है–

कालें कल्पशतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोकसंभ्रातिकरणपटुः[1]।।

सैकड़ों कल्पकाल के व्यतीत हो जाने पर भी मोक्ष को प्राप्त हुए जीवों में विकार आवागमन संभव नहीं है। भले ही तीनों लोकों में क्षोभ करने वाला ऐसा उत्पात ही क्यों न हो जाये?

अनंत ईश्वरों का अस्तित्व–तीनलोक के अग्रभाग पर ऐसे अनन्तानन्त सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं और ये सभी संसार के चतुर्गति के भ्रमण से छूटकर ही मुक्त हुए हैं। इसीलिए जैनधर्म में अनंत ईश्वरों का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। हम और आप में से कोई भी महापुरुष दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता आदि सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर बन सकते हैं अथवा कोई भी रत्नत्रय के बल से कर्मों को नाशकर सामान्य केवली होकर सिद्ध परमात्मा बन जाते हैं जैसे भरत-बाहुबली आदि।

क्या जैनधर्म नास्तिक है ? भारतीय दर्शन में लिखा है–"वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार न करने तथा ईश्वर में आस्था न रखने वाले भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का स्थान चार्वाक दर्शन के बाद आता है।"

किंतु यह बात उचित नहीं है जैनधर्म में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं माना है क्योंकि ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानने में अनेक दोष आते हैं। जैसे कि ईश्वर विश्व के प्राणियों के प्रति दयालु है, परमपिता है पुनः वह किसी को पाप का फल नरक, निगोद, तिर्यंच योनि अथवा दुःखी दरिद्री क्यों बनाता है? यदि कहो पाप का फल कटु ही है तो फिर परमपिता परमेश्वर ने हिंसा, झूठ, व्यभिचार आदि पापों की सृष्टि ही क्यों की?

कहा भी है–

विचित्रभुवनत्रयं यदि कदाचिदीशः सृजेत्।
जगद्धि सकलं शुभं निखिलदोषशून्यं न किं।।

1. भारतीय दर्शन पृ.।

निगोदनरकादि-दुर्गतिकृतिश्च दुष्टाय चेत्।
कथं पुनरधर्मिणां विहितसृष्टिरन्यायिनी[1]।।9।।

यदि ईश्वर ने तीनों लोकों को बनाया है तो उसने दोषों से रहित शुभरूप ही सारा जगत् क्यों नहीं बनाया? यदि कहो दुष्टों के लिए ये नरक, निगोद आदि दुर्गतियां बनाई गईं तो पुनः दुष्टों की सृष्टि ही क्यों की?

न युज्यत इयं कृतिः सकलजंतु-कारूण्यतः।
कुतूहलधियापि चेन्न महतां हि संभाव्यते।।
अदृष्टपरिकल्पनापि जिन! नो भवेत्त्वद्द्विषां।
अतश्च भवतो विना क्वचिदपीश्वरत्वं कथं[2]।।20।।

ईश्वर संपूर्ण प्राणीमात्र पर करूणा करने वाला है अतः उनके द्वारा यह शुभ-अशुभ संसार का निर्माण युक्त नहीं है। यदि कहो ईश्वर कुतूहल बुद्धि से यह सब करता है तो यह कुतूहल भी महापुरुषों के लिए नहीं शोभता है। यदि कहो उन प्राणियों के भाग्य से ही यह सब होता है तो यह अदृष्ट–भाग्य की कल्पना भी अन्य जनों के यहां संभव नहीं है इसलिए हे भगवन्! वीतराग जिनेन्द्र भगवान आपमें ही ईश्वरत्व घटित होता है।

जैन सिद्धान्त के अनुसार तो प्रत्येक प्राणी ही अपनी-अपनी सृष्टि का कर्ता है और जब उसे समाप्त कर देता है तब स्वयं ही सिद्ध भगवान बन जाता है। जैसे कि कहा भी है–

–शिखरिणी छंद –

शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः।
विधत्ते नानाभू-पवनजलवन्हिद्रुमतनुम्।।
त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्।
स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः[3]।।18।।

प्रत्येक प्राणी अपनी द्वारा किये गये पुण्य-पाप के अनुसार प्रत्येक प्रकार के पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति-वृक्षादि में जन्म लेता रहता है। कभी यही प्राणी त्रस–दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय होकर कदाचित् पुण्य कार्य को करके जब स्वयं अपने आत्मा में स्थित हो जाता है तब कृतकृत्य हुआ भगवान बन जाता है।

इन सभी उद्धरणों से यह बात सिद्ध है कि जैन अर्हंत केवली की वाणी

1-2-3. चन्द्रप्रभुस्तुति।

को ही 'वेद' मानते हैं उसे 'अपौरूषेय' नहीं मानते। ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर भी अनन्त ईश्वर मानते हैं। आत्मा के अस्तित्व को, परलोक को और पुण्य-पाप तथा उसके फल को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए ''जैनधर्म'' चार्वाक के समान नास्तिक धर्म नहीं है।

जैनधर्म शाश्वत है–''कर्मारातीन् जयतीति जिनः'' व्याख्या के अनुसार कर्म शत्रुओं को जीतने वाले जिन हैं और ''जिनो देवता अस्येति जैनः'' जिन भगवान जिनके देवता हैं–उपास्य हैं वे जैन हैं। अतः यह जैनधर्म शाश्वत है, प्राणीमात्र का हित करने वाला है, सभी को भगवान बनने के लिए अधिकार देने वाला ''सार्वभौम'' है और सर्वहितंकर है। जैनधर्म में वर्तमान में भगवान ऋषभदेव से महावीर तक चौबीस तीर्थंकर माने हैं।

वेदों में भी श्रीऋषभदेव–ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में श्री ऋषभदेव के नाम आये हैं।

''ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये[1]।''

''ॐ नमो अर्हतो ऋषभाय[2]।''

मनुस्मृति में भी कहा है–

दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः,
नीतित्रितयकर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः[3]।।

भागवत में भी कहा है–

''भगवान परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमंथिनां शुक्लया तमुवतार[4]।''

यज्ञ में महर्षियों द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर श्रीभगवान महाराज नाभिराज का प्रिय करने के लिए उनके रणिवास में मरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर संयासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रगट करने के लिए शुद्ध सत्वमय विग्रह से प्रगट हुए।

नित्यानुभूतिनिजलाभनिवृत्ततृष्णः, श्रेयस्य तद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-माख्यान् नमो भगवते ऋषभाय तस्मै।।

जैन ग्रंथों के अनुसार ये भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी में युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर हुए हैं और वैदिक ग्रंथों के अनुसार ये अष्टम अवतार

1.ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. मनुस्मृति 4. भागवत स्कंध 5, अ. 6। 5.भागवत स्कंध 5, अ.6।

माने गये हैं। यथा–

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी वा-भिचंद्रोऽथप्रसेनजित्।।
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुलसत्तमाः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जातः उरक्रमः[1]।।

भरत के नाम से भारतवर्ष–इन्हीं ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरतचक्रवर्ती के नाम से हमारे देश का नाम ''भारतवर्ष'' पड़ा है। ऐसा ''आदिपुराण'' में कहा ही है। वैदिक ग्रंथों में भी कहा है। जैसे कि–

''येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण।
आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति[2]।।''
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः[3]।।
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।।

भगवान ऋषभदेव से भरत हुए जो कि सौ पुत्रों में अग्रणी वीर थे। ऋषभदेव ने भरत पुत्र का राज्याभिषेक करके दीक्षा ले ली। भरत ने हिमवान से लेकर दक्षिण क्षेत्र पर्यंत जो राज्य प्राप्त किया था विद्वानों ने उस समस्त क्षेत्र को ''भारतवर्ष'' इस नाम से जाना है।

चौबीसों तीर्थंकरों के शासन की महिमा–इस भारत देश में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक यह जैनशासन अहिंसा धर्म से प्राणी मात्र में शांति की स्थापना करता रहा है। आज भी इन तीर्थंकर भगवन्तों के अहिंसामयी धर्म की आवश्यकता है। क्योंकि इस पावन शासन में ''तीन'' आपस में पूर्णरूप अविरोधी– विरोध रहित होकर रहते हैं।

इसी बात को श्रीसमन्तभद्रस्वामी ने कहा है–

नयसत्त्वर्तवः सर्वे गव्यन्ये चाप्यसंगता[4]।

नय, सत्व-प्राणी और ऋतुएं ये तीनों जैन शासन में परस्पर विरोधी होते हुए विरोध को छोड़कर मैत्रीभाव को प्राप्त कर लेते है। जैनधर्म के अनुसार द्रव्यार्थिक नय कहता है–आत्मा नित्य है, जन्म-मरण से रहित है, पर्यायार्थिक नय कहता है कि–आत्मा अनित्य है, जन्म-मरण के निमित्त से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी आदि पर्यायों को धारण करता है। कथंचित् अपेक्षा से ये दोनों बातें सही

1. मनुस्मृति। 2. भागवत स्कंध, अ. 4। 3. वायुपुराण। 4. स्तुति विद्या।

हैं आत्मा नित्य भी है क्योंकि अनादिकाल से अनन्त काल तक विद्यमान है। पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी है क्योंकि मनुष्य को छोड़कर देव में जन्म लेता है इत्यादि। ऐसे ही परस्पर विरोधी प्राणी भी महामुनियों का और तीर्थंकर भगवन्तों का आश्रय लेकर परस्पर के वैर को छोड़कर प्रीति को प्राप्त हो जाते है।

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतम्।
मार्जारी हंसवालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगीम्।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनां क्षीणमोहम्[1]।।

हरिणी सिंह के बच्चे को पुत्र की बुद्धि से स्पर्श करती है, गाय व्याघ्र के बालक को, बिल्ली हंस के बच्चे को एवं मयूरनी प्रेम के वश में सर्प के बच्चे को प्यार करने लगती है। जन्म से ही वैर को धारण करने वाले ऐसे क्रूर पशु भी बैर, अभिमान आदि को छोड़ देते हैं। कब? जबकि ये परमसाम्य को प्राप्त क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दोषों से रहित ऐसे महायोगियों का आश्रय ले लेते हैं।

इसी प्रकार इन महापुरुषों की छत्रछाया में कितने ही कोसों तक छहों ऋतुओं के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं।

वर्तमान में आवश्यकता—वर्तमान में भी ऐसे ही महापुरुष प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने के लिए, परस्पर में सौहार्द भाव स्थापित करने के लिए और पर्यावरण की शुद्धि के लिए सन् 1998 से 2001 तक ''श्रीऋषभदेव के समवसरण का श्रीविहार' सारे भारत में कराया गया।

भगवान के 'कृषि' क्रिया का सही रूप बतलाने के लिए तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि धर्म का मूल्यांकन कराने के लिए ही हस्तिनापुर में 4 अक्टूबर से 6 अक्टूबर 1998 तक एक ''भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन'' आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में पधारे सभी कुलपति महोदयों ने जैनधर्म के संस्थापक भगवान महावीर नहीं हैं प्रत्युत चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी हुए हैं, ऐसा प्रतिपादन किया है। अतः जैनधर्म की अतीव प्राचीनता स्वतः सिद्ध है।

अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव—4 फरवरी 2000 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा लाल किला मैदान, दिल्ली से एक वर्ष तक चलने वाले 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' का उद्घाटन किया गया।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि स्थानों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम

1. ज्ञानार्णव।

से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर देश-विदेश में अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

फरवरी 2001 में निर्वाण महोत्सव वर्ष समापन के उपलक्ष्य में भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का नवनिर्माण करके वहाँ के इतिहास को पुनः जीवन्त किया गया। आज से कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पूर्व युग की आदि में भगवान ऋषभदेव ने प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे दीक्षा ली थी एवं केवलज्ञान भी प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे हुआ था। आज भी वही वटवृक्ष शाखा–उपशाखा के रूप में विद्यमान है जो कि ''अक्षय वटवृक्ष'' के नाम से जाना जाता है। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षाकल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' के ऊपर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। कैलाशपर्वत की गुफा में सवा तीन फुट पद्मासन अष्टधातु की ऋषभदेव प्रतिमा विराजमान हैं, जहाँ भक्तगण पूजा-पाठ करके मनोवांछित फल की प्राप्ति करते हैं। इसी पर्वत के ईशान कोण में 4 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट उत्तुंग 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी निर्मित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इसी प्रकार से अनेकानेक आयेजनों के माध्यम से भगवान ऋषभदेव के प्रचार-प्रसार से आज समाज में जागृति उत्पन्न हुई और जैन समाज अब भगवान महावीर की जन्मजयंती एवं निर्वाण महोत्सव के समान ही प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की जन्मजयंती एवं निर्वाणोत्सव मनाने लगा है। आप सभी श्रद्धालुभक्त भगवान ऋषभदेव से महावीर तक चौबीसों तीर्थंकर भगवान की भक्ति करते हुए सभी को जैनधर्म की अनादिनिधनता से परिचित करावें, यही मंगल प्रेरणा है।